भारतीय संस्कृति के गौरव की पुनर्स्थापना-विषयक कुछ स्फुट विचार

फटक चंद गिरधारी

मुहल्ले के भाई जी चिरकुमार हैं। अपना कोई परिवार नहीं। आजीवन संघ सेवा का व्रत! पिछले माह नागपुर गये थे तो लौटते हुए भोपाल में अपने अनुज के घर रुके। इरादा हफ्ते-दस दिन विश्राम का था, पर अपसंस्कृति के घटाटोप से घबराकर दो दिन बाद ही चल दिये। जवान भतीजियों को स्किनटाइट पैण्ट और बनियान जैसी स्पोर्ट शर्ट पहनकर कालेज जाते देख उनकी आँखें फटी की फटी रह गयी। लज्जा-मर्यादा-परम्परा, सबकुछ ताक पर। भाई-बहू को समझाया तो उन्होंने ज़माने की हवा और बच्चों के बड़े होने की बात करके लाचारी जताई। भतीजियों को समझाने की कोशिश की तो उन्होंने मुँह बिचका दिया।

भाई जी की व्यथा सुनकर मुझे याद आया कि गोविन्दाचार्य जी ने (उनका नाम याद है न!) ये सद्विचार प्रकट किये थे कि विदेशी संस्कृति और प्रभाव अपसंस्कृति की रोकथाम के लिए एक सांस्कृतिक लोकपाल नियुक्त किया जाना चाहिए।

मैं कल्पना में एक संस्कृतिक लोकपाल में फतवों और दण्डों से "गौरवशाली" भारतीय संस्कृति को बहाल होते देख रहा हूँ।

सांस्कृतिक लोकपाल मुहल्ले और गाँवों के स्तर निगरानी दस्ते (संस्कृति - पुलिस?) बनायेगा जो कहीं भी, सड़क पर, कैम्पस में, किसी युवक-युवती को साथ देखेंगे तो पीट सकते हैं। स्त्री-पुरुष मैत्री संज्ञेय अपराध होगा। सड़क पर पति-पत्नी या भाई-बहन को भी मर्यादा में रहना होगा। स्त्रियों को स्पष्ट चेतावनी दे दी जायेगी कि वे भरसक घरों में ही रहें और बेहद मजबूरी में ही बाहर निकलें। विधवाएँ सामाजिक धार्मिक शुभ मुहूर्तों पर अनुपस्थित रहेंगी। वैसे पति के साथ सती हो जाना आदर्श विकल्प होगा! वगैरह-वगैरह...

लेकिन प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्थापना की बात से, अपने अल्प इतिहास-ज्ञान के आधार पर, मेरे मन में प्रायः कुछ शंकाएँ भी उठती हैं। बौद्ध धर्म के पूर्व, हिन्दू तो गोमांस भी खाते थे। खजुराहो और कामसूत्र का क्या होगा? नगर-वधू प्रथा का क्या होगा?... अनर्थ! घोर अनर्थ! मैं उपनिवेशवादियों, नेहरूवादियों और वामपंथियों के पढ़ाये झूठे इतिहास की घुट्टी पीकर मतिभ्रष्ट हो गया हूँ। अभी सांस्कृतिक लोकपाल और उसके निगरानी दस्ते होते तो मजा चखा देते! निपट लेते!

पर अभी वे नहीं है! फिलहाल पश्चिमी संस्कृति और अश्लीलता फैलाने वालों से विद्यार्थी परिषद् और विहिप की वाहिनियाँ निपट रही हैं। शिव सैनिक और बजरंगदली निपट रहे हैं। इसी तरह का निपटान इटली और जर्मनी में भी हुआ था। डाक्टर साहब (हेगडेवार) और गुरूजी (गोलवलकर) ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। फिल्मों की शूटिंग प्रदर्शन और नाटकों के मंचन भी कोई पहली बार नहीं रोके जा रहे हैं। पुस्तकालयों का ध्वंस कोई पहली बार नहीं हो रहा है।

अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं जब कानपुर में और लखनऊ में वैलेंटाइन डे पर प्रेमियों-प्रेमिकाओं, संभावित प्रेमियों - प्रेमिकाओं और संदिग्ध प्रेमियों - प्रेमिकाओं को पीटा गया, उनसे परस्पर राखी बँधवाई गई। इसके ठीक बाद विद्यार्थी परिषद ने कानपुर में लड़कियों के तीन विद्यालयों और सह शिक्षा के एक विद्यालय में ड्रेस कोड लागू करवाने का दावा किया। लड़कियों के जीन्स और स्कर्ट पहनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अश्लील और विदेशी पोशाक!

पर यहीं मेरे दिमाग में शंका का एक कीड़ा कुलबुलाने लगता है। इतिहास के पन्ने पलटता हूँ। विद्वज्जनों की राय लेता हूँ। बात बनती नहीं। शंका यह है कि खाकी हाफ पैण्ट क्या हमारी भारतीय परम्परा की पोशाक है? राम-कृष्ण, जैसे पौराणिक चरित्र या राणा प्रताप, शिवाजी जैसे इतिहास पुरुष, उनके सैनिक, दरबारी कोई भी तो हाफ-पैण्ट नहीं पहनते थे। यह तो खाँटी विदेशी पोशाक है-हमारे यहाँ गोरे साहबों की तफरीह पोशाक थी जो उनकी देखा-देखी कुछ काले-भूरे साहब भी पहना करते थे। हाँ, कछ खास किस्म के नात्सी दस्ते भी पहनते थे शायद। भारतीय संस्कृति में तो धोती और सिर्फ धोती रही है। ऊपर कुछ नहीं, या ज्यादा से ज्यादा अंगरखा, चादर और भाँति-भाँति के गहने। मिर्जई, पाजामा, कुर्ता आदि तो मध्यकाल में मुसलमानों के ("यवनों" के) द्वारा लाये गये। शर्ट, बुशशर्ट, कमीज, कोट-यह सब यूरोपीय उपनिवेशवादी लेकर आये। अब यह बात समझ में नहीं आती कि आर.एस.एस. और भाजपा प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों की विदेशी पोशाकों पर रोक क्यों नहीं लगाती!

आर.एस.एस. की टोपी भी भारतीय नहीं है। भारत के विभिन्न हिस्सों में पगड़ी, मुरैठा या खास तरह की टोपियों (जैसे गुजरात में) का चलन था। सल्तनत काल और मुगल काल में फारस, तुर्की, अरब, अफगानिस्तान और समरकन्द के इलाकों से कुछ टोपियाँ आईं। पर आर.एस.एस. की टोपी खाँटी यूरोपीय काट की सैनिक टोपी है।

अब श्लीलता-अश्लीलता का सवाल भी बड़ा उलझा हुआ है। क्षमा करें, मुझे तो आर.एस.एस. की हाफ पैण्ट ही बहुत अश्लील लगती है। एक तो प्रायः छोटी होती है, घुटनों से काफी ऊपर। दूसरे उसका पाँयचा या घेरा बहुत चौड़ा होता है। चुस्त होती तो थोड़ी गनीमत होती। कुछ-कुछ मिनी स्कर्ट जैसी हाती है। बैठने पर और भद्दी लगती है। सुबह-सुबह सभी पार्कों मे आर.एस.एस. के स्वयंसेवक यही पोशाक पहने मिल जाते हैं। महिलाओं की उपस्थिति में अच्छा नहीं लगता। ये स्वयंसेवकगण धोती-कुर्ता या कोई और सलीके की भारतीय पोशाक क्यों नहीं पहनते? छोटे-छोटे पैण्टों में प्रौढ़ स्वयंसेवकों के ढीले, थलथल करते शरीर अश्लील लगते हैं।

कोई सांस्कृतिक लेखपाल नियुक्त होगा तो उसके दफ्तर में मेरी पहली दरख्वास्त यह होगी कि आर.एस.एस. वालों की विदेशी और अश्लील पोशाक बदलवाये या फिर ऐसे वस्त्र धारण करके उन्हें सार्वजनिक स्थानों पर आने से रोके। 'ड्रेस कोड' बने। भारतीयता लागू हो। विदेशी प्रभाव और अश्लीलता पर रोक लगे। पर नियम सबके लिए समान हों। बल्कि भाजपाइयों और संघियों को पहले तो खुद ही आगे बढ़कर मिसाल पेश करनी चाहिए। 'स्वदेशी' को भी पहले अपने ऊपर लागू कीजिए जनाब! दोमुँहेपन से अश्लील और कुछ नहीं होता।

●